

अज्ञानभाव से राग का कर्ता-भोक्ता होता है। मगर भेदज्ञान हुआ तो आत्मा राग का अकर्ता और वीतरागभाव का कर्ता होता है। परिणमता है तो कर्ता होता है। तो ये दोनों ही बात जो बंध-मोक्ष का कर्ता लिखा है, वो व्यवहारनय का कथन है। निश्चयनय से भगवान आत्मा, वो पारिणामिक स्वभाववाला है।

तो निष्क्रिय-शुद्धपारिणामिक: आत्मा का स्वभाव निष्क्रिय-शुद्धपारिणामिक है। तो उसमें प्रश्न आया, शिष्य ने (प्रश्न) किया कि निष्क्रिय-शुद्धपारिणामिक इति का अर्थ, उसका अर्थ क्या है? क्योंकि सारा जगत (तो) आत्मा को कर्ता ही मानता है। कर्ता की चर्चा ही करता है। भैया! क्या करें? अज्ञानभाव में राग का कर्ता और जब ज्ञान होवे तब ज्ञान का कर्ता, ऐसा शास्त्र में भी आवे। ज्ञान-क्रिया स्वभावभूत होने से (से) निषेध करने में नहीं आयी। इसलिए आत्मा कर्ता है और आत्मा का ज्ञान आत्मा का ही कर्म है। कर्ता-कर्म, व्याप्य-व्यापक एक द्रव्य में है। आहाहा! ये सब व्यवहार है। मगर कर्ता नहीं है। पर का अकर्ता कहने के लिए, आत्मा को, उपचार से, व्यवहार से कर्ता कहा जाता है। परिणमता है, इसलिए (आत्मा को) कर्ता कहा जाता है। सचमुच आत्मा अपने परिणाम का भी कर्ता नहीं है।

द्रव्यकर्म और नोकर्म और जगत का, जड़-चेतन की बात तो बहुत दूर रही। अपने अंदर, भीतर में, अज्ञानभाव से अज्ञान का कर्ता (और) ज्ञानभाव से ज्ञान का कर्ता। स्वभावग्राही ज्ञान से देखो, तो अज्ञान का भी कर्ता नहीं, ज्ञान का भी कर्ता नहीं, ऐसा निष्क्रिय परमात्मा अंदर विराजमान है। उसको द्रष्टि में लेने से सम्यग्दर्शन होता है।

उसका, प्रश्न किया शिष्य ने कि भाई! शास्त्र में तो बहुत बात आती है, कर्ता की। एक द्रव्य में कर्ता-कर्म है, व्याप्य-व्यापक है। बहुत बात आती है। (तो कहें) कि हमको मालूम है। तो आप फ़रमाओ कि आत्मा निष्क्रिय है, कर्ता नहीं है, उसका न्याय तो दे दो कुछ। तो आचार्य भगवान ने न्याय दिया कि बंध के कारण की क्रिया रागादि की (होती हो), मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र का परिणाम, आश्रव-तत्व का कर्ता, कर्ता नहीं है (आत्मा)। कि कभी कर्ता नहीं है? कि संवर होवे तब? (तो कहें) कि नहीं! क्या कहा? ये तीन महीने का कोर्स चलता है, पहले। बाद में तीन-महीने का कोर्स तो इधर में से निकलेगा।

मुमुक्षु:- ६ महीने रहना पड़ेगा?

उत्तर:- बस! ६ महीने।

मुमुक्षु:- आपको!

उत्तर:- रहना पड़ेगा नहीं। काम करना पड़ेगा। आपको क्या? इधर रहने की बात नहीं है, जयपुर में।

मुमुक्षु:- कोर्स तो पूरा जानना पड़ेगा ना!

उत्तर:- कोर्स तो अपने आप आहाहा! निरपेक्ष है आत्मा। द्रव्य सत्, गुण सत् और पर्याय सत्। निमित्त से निरपेक्ष कार्य होता है। आहाहा! ऐसा सब आयेगा, इसमें सब भरा है, माला। आहाहा! किसी की ज़रूरत नहीं है। उपादान को किसी की ज़रूरत होती नहीं है। आहाहा! निमित्त से निरपेक्ष कार्य होता है, उपादान में। उपादान के अंदर कार्य होता है, वो निमित्त से तीनकाल में होता नहीं है। अरे! निमित्त से तो

नहीं होता है, मगर त्रिकालीद्रव्य से भी कार्य होता नहीं है।

...पहले तीन-महीने का कोर्स है, अकर्ता का। मान रखा है कि मैं कर्ता हूँ, कर्ता हूँ, कर्ता हूँ। आहाहा! बड़ी भारी भूल है। हाँ! मुकुंदभाई की 'हाँ' आती है। अंदर में से 'हाँ' आवे ऐसी बात है, अपने आत्मा की बात है। विकथा की इधर मनायी है, सख्त। बाहर बोर्ड लगा है। विकथा की इधर सख्त मनायी है। आत्मकथा चलती है इधर। आहाहा!

तो आत्मा, इस आश्रव का कर्ता क्यों नहीं है? लिखा तो है, शास्त्र में। लिखा है, मगर उसका अभाव करने का तरीका बताते हैं, कि भगवान आत्मा मिथ्यादर्शन के परिणाम का कर्ता नहीं है। क्यों नहीं है? शिष्य ने प्रश्न पूछा। क्यों नहीं है? शास्त्र में तो बहुत आता है। जो कर्ता नहीं होता तो चारगति नहीं होती। आहाहा! जहाँ तक कर्ता मानता है, वहाँ तक चारगति खड़ी रहेगी। जिस क्षण मैं ज्ञाता-अकर्ता हूँ (ऐसा माना), तो चारगति का अभाव हो जायेगा। बीज तो अभी निकल जायेगा। क्रम से दो-चार भाव होवें, बाक़ी तो, आहाहा! मोक्ष हो जायेगा, उसका।

तो बंध का कारण वो जो क्रिया, राग-द्वेष-मोह का जो परिणाम, आश्रव-तत्व, उसका आत्मा कर्ता नहीं है। क्यों कर्ता नहीं है? कि तद्रूपो न भवति। उस रूप होता नहीं है। भगवान चैतन्य परमात्मा आश्रवरूप होता नहीं है, इसलिए उसका कर्ता नहीं है। अभी कर्ता की बात है। ज्ञाता की बात इसमें से, दूसरे तीन-महीने के कोर्स में आयेगी। उसका ज्ञाता भी नहीं है। वो बाद में तीन-महीने का कोर्स पहले तो चलता है ना। तीन महीने के कोर्स में पास होवे ना, तो वो (बाद का) तीन महीने का कोर्स दिमाग में आएगा। जहाँ तक मैं कर्ता हूँ वहाँ तक मैं ज्ञाता हूँ, स्व का ज्ञाता हूँ (और) पर का (ज्ञाता) नहीं (हूँ), वो बैठेगी नहीं बात।

तो आचार्य भगवान ने उत्तर दिया कि भैया! राग का कर्ता आत्मा नहीं है। क्यों नहीं कर्ता है? कि तद्रूपो न भवति। जैसे एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य से भिन्न है, इसलिए एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में व्याप्य-व्यापक होता नहीं, इसलिए कर्ता-कर्म दो द्रव्यों के बीच में होता नहीं है। ऐसे भगवान जो आत्मा निष्क्रिय परमात्मा, शुद्धात्मतत्व है, वो राग का कर्ता नहीं है। कि कभी? कि संवर उत्पन्न होवे तभी? (तो कहें) कि नहीं। अनादि से कर्ता नहीं है। ऐसा भगवान आत्मा निष्क्रिय परमात्मा अंदर (में) विराजमान है। तद्रूपो न भवति। उस रूप होता नहीं उस कारण से - गुजराती आ गई।

उस कारण से वो राग का कर्ता नहीं है। तो राग तो होता है, उसका कर्ता कौन है? कि परिणाम का कर्ता परिणाम है। कर्म से नहीं होता है राग, और जीव से भी नहीं होता है। परिणाम से राग होता है। क्षणिक-उपादान से, अशुद्ध क्षणिक-उपादान से, तत्समय की योग्यता से, उसके षट्कारक से, स्वयं, निसर्गज, ऐसा पाठ है संस्कृत का। आहाहा! निसर्गज राग उत्पन्न होता है। अद्धर से उत्पन्न होता है? कि अद्धर से उत्पन्न होता है। आत्मा के साथ आधार-आधेय संबंध है? कि नहीं है। आधार-आधेय संबंध मात्र - एक परिणाम का आधार परिणाम है। आहाहा! मेरे आधार से राग होता नहीं है। एक समय (भी) राग के (साथ) आधार-आधेय संबंध माने तो तीनोंकाल में आधार-आधेय संबंध बंध जायेगा और कभी सम्यग्दर्शन होनेवाला नहीं है।

ज्ञानमात्र भाव यानि ज्ञानस्वरूपी आत्मा। ज्ञानमात्र भाव अर्थात् ये ज्ञानस्वभावी आत्मा। ज्ञान के अंदर अनंतगुण गर्भित, ऑटोमेटिक (automatic), अविनाभाव आ जाते हैं। ज्ञान की प्रधानता से कथन चलता है। **ज्ञानमात्र भाव स्वयं ही**, अपने आप। स्वयं, अकेला स्वयं नहीं। स्वयं ही। आहाहा! किसी की अपेक्षा बिना, शास्त्र की अपेक्षा बिना, स्वभाव से ही ज्ञानरूप है आत्मा। कौन से नय से ज्ञानरूप है? कि नय की ज़रूरत नहीं है, स्वभाव में। स्वभाव में नय की ज़रूरत नहीं है। समझाने लिए ज़रूर है नय, मगर अनुभव के लिए नय की ज़रूरत होती नहीं।

स्वभाव से ज्ञानमात्र आत्मा है। आहाहा! कि ज्ञानावरणीयकर्म का उदय, उपशम, क्षय, ये कुछ भी लागू पड़ता नहीं है। आत्मा स्वयं, स्वयमेव, अपने आप ही। सम्यक्एकांत किया, आहाहा! 'ही'। एक भाईसाहब ने शुरू (में) लिखा है ना, उसमें 'ही' और 'भी' की बहुत चर्चा लिखी है। 'ही' और 'भी' की चर्चा, बहुत चर्चा अच्छी (है)। हमको अच्छी लगी। हमको अच्छी लगी थी। हिन्दी में नहीं आता। गमी थी, पसंद आई थी। अच्छी लगी थी। आहाहा!

'ही' और 'भी'। तो 'ही' सम्यक्एकांत का द्योतक है। मिथ्याएकांत का द्योतक बिल्कुल नहीं है। आहाहा! सम्यक्एकांतपूर्वक अनेकांत हो जाता है, वो नक्की बात है। अनेकांत का तीन प्रकार है। अनेकांत का तीन प्रकार है। अनेकांत का (जो) दो प्रकार है, वो भेदज्ञान-परख है। और तीसरा जो अनेकांत का प्रकार है, वो अनुभव में अनंतगुण, अनंत-पर्याय, अनंत अपेक्षित-धर्म एक समय में जानने में आते हैं। वो प्रमाणरूप अनेकांत, वो नय का फल, भेदज्ञान का फल है।

तो तीन प्रकार के अनेकांत की व्याख्या ऐसी है, शॉर्ट में कहता हूँ मैं। एक तो स्व-चतुष्टय में पर-चतुष्टय की नास्ति है। यानि प्रमाण के बाहर जाना नहीं। आहाहा! वो आयी है कि नहीं? नहीं आयी? अच्छा! याद आया। स्व-चतुष्टय (में) पर-चतुष्टय की नास्ति है। भेदज्ञान-परख है, भाषा-परख नहीं है। भाषा का काम नहीं है। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव मेरा, अनन्या द्रव्य-गुण-पर्याय, मेरे में, मेरे में हैं। देह-मन-वाणी-कर्म, लोकालोक (की), मेरे में नास्ति है। तो मेरा नहीं है, आ जाता है, स्वयं। जो मेरे में उसकी नास्ति है, वो मेरी चीज़ होती नहीं है। यशपाल जी! भेदज्ञान है। प्रमाण में भी भेदज्ञान। आहाहा! वो प्रमाण का विषय। प्रमाण दो द्रव्यों को जुदा कर देता है। प्रमाण-ज्ञान दो द्रव्यों को जुदा करता है। स्व-चतुष्टय में पर-चतुष्टय की नास्ति है। आहाहा! मगर चौबीसों घंटे उपयोग राग से रंगा हुआ है, उसको मालूम नहीं पड़ता है कि क्या स्व-चतुष्टय में पर-चतुष्टय की नास्ति है। शब्द भी नया लगे किसी को। आहाहा! अभ्यास करना चाहिए, आत्महित के लिए है। अपने हित के लिए है।

तो स्व-चतुष्टय यानि अपना द्रव्य, अपना क्षेत्र, अपना काल, अपना भाव। द्रव्य-अनंतगुणों का पिंड, क्षेत्र-प्रदेश - असंख्यात प्रदेशी, स्वकाल पर्याय, स्वभाव-गुण अंदर में हैं, विराजमान। ऐसे सारा पदार्थ, स्वपदार्थरूप से हूँ और परपदार्थरूप से नहीं हूँ। परपदार्थ के साथ कोई मेरा नाता, संबंध नहीं है। कर्ता-कर्म संबंध नहीं, निमित्त-नैमित्तिक संबंध नहीं और ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध भी पर के साथ नहीं है।

शांति से सुनना सब आ जायेगा इसमें। आहाहा! तो पहले जो प्रमाणरूप भेदज्ञान है, वो भेदज्ञान-परख है। भेदज्ञान उसमें होता है। पर से आत्मा भिन्न हो जाता है। पर के अंदर ममत्व छूट जाता है। कर्ता-

कर्म संबंध की भ्राँति निकल जाती है।

दूसरा एक ये जो अनेकांत, भेदज्ञान-परख। पहला शब्द और दूसरा अंदर में। अंदर में, अंदर आओ कि मैं द्रव्यस्वरूप हूँ और पर्यायस्वरूप नहीं हूँ। प्रमत्त-अप्रमत्त की मेरे में नास्ति है। वो भेदज्ञान-परख है। वो भेदज्ञान करने से आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है। पर्यायमात्र से मैं भिन्न हूँ, इसलिए मैं पर्याय का कर्ता-भोक्ता नहीं हूँ। बहुत उसमें विस्तार है, ये तो शॉर्ट में कहता हूँ।

तो उसका फल क्या आया? कि आत्मा का अनुभव हो गया। कि मैं ज्ञायक हूँ और नाशवान जो पर्याय है, वो मेरा स्वरूप (नहीं है)। मैं अविनाशी त्रिकालीद्रव्य हूँ, तो द्रव्यद्रष्टि हो जाती है। तो वो अनुभव हुआ जब, तो अनुभव-ज्ञान है, वो ज्ञान प्रमाण हो जाता है। तो प्रमाण-ज्ञान में अनेकांत का ज्ञान हो जाता है। अनेकांत यानि अनेक अंत। अनंतधर्मात्मक सारा आत्मा, अनुभव के काल में ज्ञान में ज्ञेय हो जाता है। तो ज्ञान में ज्ञेय हुआ (तब) वो दो अनेकांत का फल तीसरा अनेकांत आ गया। आहाहा! सम्यक्अनेकांत - एकांतपूर्वक अनेकांत हो जाता है। ऐसे अनेकांत की बात भी बहुत समझने जैसी है। स्याद्वाद(रूप) है, हमारा जैनधर्म, अनेकांतरूप है, अनेकांतरूप है। आहाहा! शुद्धभाव से धर्म होवे और शुभभाव से धर्म होवे। कथंचित् आत्मा अपना कर्ता और कथंचित् पर का कर्ता, ऐसा अनेकांत होता नहीं है। वो तो अज्ञानभाव है भैया! आहाहा! अभी अनेकांत का फल अनेकांतज्ञान हो गया, सम्यग्ज्ञान हो गया।

अभी ये व्याख्यान चलेगा इसमें, क्या कहा? कि **ज्ञानमात्र भाव स्वयं ही ज्ञान है**। ये आया ना 'ही', उसका खुलासा आया। **स्वयं ही अपना ज्ञेय है**। आहाहा! स्वयं अपना ज्ञेय है। यह आत्मा स्वयं, स्वयं अपना ज्ञेय है। स्वयं अपना ज्ञेय है। हिंदी में क्या? **स्वयं ही अपना ज्ञेय है**। आहाहा! दूसरा, **और स्वयं ही अपना ज्ञाता है**। स्वयं ही अपना ज्ञाता है। ज्ञाता की व्याख्या, पर का ज्ञाता, ऐसी ज्ञाता की व्याख्या ही नहीं है। इसमें लिखा है। संस्कृत में लिखा है। क्या लिखा है? कि **स्वयं ही अपना ज्ञाता है**। ज्ञाता की व्याख्या। स्वयं अपने को जाने इसलिए आत्मा का नाम ज्ञाता है। पर को जाने, स्व-पर को जाने, इसलिए ज्ञाता है, ऐसा है ही नहीं है।

वो साध्य की सिद्धी की बात चलती है। ध्यान रखना! जानने का विषय अभी गौण कर देना। हमें पंडिताई नहीं करनी। अपने को तो आत्मा का अनुभव कर लेना है। आहाहा! **और स्वयं ही अपना ज्ञाता है**। मैं तो मेरे को जानता हूँ, पर को जानता नहीं हूँ। भेदज्ञान है उसमें। मैं मेरे को जानता हूँ और पर को जानता नहीं, इसमें इंद्रियज्ञान रुक जाता है और अतीन्द्रियज्ञान प्रगट हो जाता है। सब खुलासा आयेगा आहिस्ते-आहिस्ते। **स्वयं ही अपना ज्ञाता है - इस अर्थ का काव्य कहते हैं।** आचार्य भगवान का अभी काव्य है। बोलो काव्य बोलो-

(शालिनी)

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि

ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव।

ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन्

ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ॥ ॥२७१॥

आहाहा! ऐसा संस्कृत का श्लोक अमृत जैसा है। अमृतचंद्र (आचार्य) का श्लोक अमृत जैसा है। पहली कर्ताबुद्धि छूट जाए, बाद में, पर की ज्ञाताबुद्धि छूटे और साक्षात् ज्ञायक का ज्ञाता बन जाए, अनुभव हो जाए और भव का अंत हो जाए, ऐसी ये टीका है। अद्भुत टीका है। आहाहा!

श्लोकार्थ। इसका श्लोकार्थ। **जो यह ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ** ज्ञानमात्र यानि ज्ञानस्वरूपी भगवान जो आत्मा है, वो मैं हूँ, वो मैं हूँ। आहाहा! देह मेरा और कर्म मेरा और मैं रागी हूँ? रागी है ही नहीं। है ही नहीं। कभी होगा भी नहीं। रागी नहीं होता है, आत्मा। आत्मा (रागी) नहीं होता है। अनात्मा होता है। रागी होता है (वो) अनात्मा होता है। आत्मा रागी होता नहीं। आत्मा तो ज्ञानमयी है। आहाहा! ज्ञानस्वभाव को छोड़ता नहीं है।

जो यह ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ, वह ज्ञेयों के ज्ञानमात्र ही नहीं जानना चाहिए। ज्ञेयों का जाननेवाला है, इसलिए आत्मा ज्ञाता है, ज्ञायक है, ज्ञानमात्र है, ऐसा नहीं। ये तो प्रसिद्ध बात है। ज्ञेयों को जाने, उसको ज्ञान कहने में आता है। ज्ञेयों को जानता है इसलिए आत्मा तो ज्ञान-ज्ञायक है, ऐसा भी शास्त्रों में तो आता है। मलेच्छ-भाषा में अनार्य जीवों को समझाने में आता है। मुझे सब मालूम है, व्यवहार के कथन आते हैं। व्यवहार के द्वारा निश्चय समझाने का प्रयोग करते हैं। आहाहा!

यहाँ तो कोई अपूर्व बात है, आहाहा! अपूर्व-भाव से सुने तो अपूर्व-दशा भी आवे। आहाहा! होता है। नहीं होने की बात तो है ही नहीं यहाँ। हैं? हिंदी, हिन्दी अच्छा! गुजराती आ गया। अभ्यास तो गुजराती का है ना? बाक्री तो नक्की करके आया हूँ कि इधर हिंदी ही चलेगी। गुजराती आ जाती है। आहाहा!

देखो! **जो यह ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ वह ज्ञेयों के ज्ञानमात्र ही नहीं जानना चाहिए।** ज्ञेयों को जानता है, इसलिए आत्मा ज्ञाता है, ऐसा नहीं जानना चाहिए, नहीं मानना चाहिए। नहीं जानना चाहिए यानि नहीं मानना चाहिए। और जो मानता है कि (मैं) पर को जानता हूँ ना, इसलिए मेरा नाम ज्ञाता है, वो मिथ्याद्रष्टि हो जाता है। कड़क है! मगर अमृत है। आहाहा!

ज्ञेय से विमुख होने का पाठ है। ज्ञेय से व्यावृत्त होकर अंदर में जाने की प्रक्रिया चलती है। **ज्ञानमात्र ही नहीं जानना चाहिए।** पर को जानता है, ऐसा ज्ञाता का स्वरूप नहीं है। ऐसा नहीं जानना चाहिए, नहीं मानना चाहिए। आहाहा! तो क्या ये पर को नहीं जानता? कि आएगा, सब आएगा। सब इसमें आयेगा। शांति से, अपने पास टाइम तो है। अपने पास टाइम तो ५ तारीख तक का है ना। आहाहा!

[ज्ञेय-ज्ञान-कल्लोल-वल्गानु] (परंतु) ज्ञेयों के आकार से होनेवाले ज्ञान की कल्लोलों के रूप में परिणमित होता हुआ वह, जैसे ज्ञेय ज्ञान में प्रतिभासित होता है, झलकता है, उसका नाम एक अपेक्षा से ज्ञेयाकार ज्ञान है। और ज्ञेय से निरपेक्ष देखो, तो वो ही ज्ञान की पर्याय का नाम ज्ञानाकार ही है। **रूप में परिणमित होता हुआ वह, [ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातृमत्-वस्तुमात्रः ज्ञेयः] ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातामय वस्तुमात्र जानना चाहिये।** (अर्थात्) ज्ञान भी मैं, ज्ञेय भी मैं, ज्ञाता भी मैं, ये तीन धर्म हैं।

तीन धर्म का अभेद करो, तो आत्मा ही है। एक आत्मा का तीन नाम है, आत्मा तो एक ही है। भेद से तीन नाम से समझाया जाता है। बाकी वहाँ टुकड़ा नहीं होता है, अंदर में। ज्ञान इधर रहता है, ज्ञेय इधर रहता है, ज्ञाता इधर रहता है, ऐसा नहीं रहता है। एक ही स्वभाव का तीन नाम है, समझाने के लिए

ज्ञान की पर्याय है - उपयोग, उसमें नहीं आता नहीं राग। तो ज्ञायक में तो कहाँ से आवे? उपयोग में उपयोग है, मगर उपयोग में राग नहीं है। आहाहा!

भेदज्ञान की बात चलती है। लुहाड़िया जी! आहाहा! बाहर की मगजमारी, प्रमाण के बाहर रखड़ने जैसा नहीं है। और इसने ऐसा किया, इसने ऐसा किया, इसने ऐसा किया, छोड़ दे ना माथाकूट तेरी। तू तेरा कर और भाग जा ना। तेरा करके भाग जा ना। भाग जा यानि भाग जा चला जा, मोक्ष में। मोक्ष की बात है। आहाहा!

दूसरे की बात में उसको रस पड़ता है। आत्मा की बात में उसको रस नहीं पड़ता है। रुचि नहीं (है) आत्मा की। आत्मा की रुचि हो, तो आत्मा की बात में रस आ जावे और पर की बात सुने, तो भी रस बिना सुन लेवे। क्या करें? कोई आदमी बड़ा होवे, बोले, (तो) ठीक है। रस नहीं लेता है। वो समझ जाता है कि (इसको) रस नहीं है। तो (वो) भाग जाता है। भाग जाता है, बैठता ही नहीं है। हैं? (इसको रस नहीं है तो) कैसे बैठे?

आहाहा! **प्रविष्ट नहीं होते**; राग ज्ञान में प्रवेश नहीं होता है। अपना उपयोग लक्षण है ना, उसमें राग आता नहीं है, तो ज्ञायक, जीव-तत्व में कहाँ से आवे? आहाहा! तो वो राग कहाँ रहता है? कि राग, राग में रहता है। उपयोग, उपयोग में रहता है। उपयोग, उपयोग में रहता है अथवा उपयोग में उपयोग रहता है। क्या कहा?

उपयोग नाम की पर्याय, पर्याय में रहती है। उपयोग नाम द्रव्य, द्रव्य में रहता है और उपयोगमय उपयोग है, तो अभेद होकर आत्मा बन जाता है। **प्रविष्ट नहीं होते; ज्ञेयों के आकार की झलक ज्ञान में पड़ने पर, ज्ञान ज्ञेयाकाररूप दिखाई देता है**। ज्ञेयो, ज्ञान में प्रतिभासित होते हैं, झलक होती है। जैसे दर्पण में झलक होती है ना? अग्नि की, बर्फ की झलक होती है, तो क्या अग्नि उसमें आ जाती है? बर्फ उसमें आ जाता है? ऐसा नहीं है, झलक है, ठीक है, तो वो **दिखाई, ज्ञेयाकाररूप दिखाई देता है**।

ज्ञेय के संबंध से ज्ञान को देखो तो वो ज्ञान की पर्याय, ज्ञेयाकाररूप दिखाई देती है। मगर जो ज्ञेय के लक्ष्य को छोड़कर, ज्ञायक के लक्ष्य से ज्ञान की पर्याय को देखो, तो ज्ञेयाकार है ही नहीं। ज्ञेयाकार ज्ञान तिरोभूत हो जाता है और सामान्यज्ञान का आविर्भाव प्रगट हो जाता है।

दिखाई देता है, परंतु वे ज्ञान की ही तरंगें हैं। तरंगे यानि पर्याय। ज्ञान की पर्याय हैं, ज्ञेय की पर्याय नहीं है। क्योंकि राग की पर्याय (वो) नहीं है, वो तो ज्ञान की पर्याय है। राग तो राग में है, ज्ञान तो ज्ञान में है। जुदा ही है भैया! आहाहा!

वे ज्ञान तरंगें ही ज्ञान के द्वारा ज्ञात होती हैं। ज्ञान की पर्याय ही जानने में आती है। ज्ञेय नहीं, ज्ञेयाकार ज्ञान नहीं, मगर ज्ञान की पर्याय जानने में आती है। तो ज्ञान की पर्याय जिसको जानने में आवे, तो (वो) ज्ञायक तक चला जायेगा। अभेद होकर अनुभव हो जायेगा। वो ज्ञान की पर्याय में टिकनेवाला नहीं है, क्योंकि ज्ञेय से विमुख हुआ, ज्ञान में आया, तो ज्ञान और ज्ञायक कथंचित् अभिन्न होने से ज्ञायक का दर्शन हो जाता है। आहाहा!

इस प्रकार स्वयं ही स्वतः जानने योग्य होने से ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञेयरूप है। यह ज्ञेय की

व्याख्या। अपना आत्मा, अपने ज्ञान में स्वयं जानने में आ रहा है। इसलिए मेरा नाम ज्ञेय है। मैं जानता हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञाता है। ओहोहो! ऐसी बात अंदर की है। मैं मुझ को जानता हूँ इसलिए मैं, मेरा नाम ज्ञाता है। मैं मुझको जानता हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञाता है। और मेरे में वो आत्मा जणित (जानने में आ) जाता है इसलिए मैं ही ज्ञेय। मैं ही ज्ञेय और मैं ही ज्ञान और मैं ही ज्ञाता (हूँ)। बाहर जाने की बात ही नहीं है। सख्त मनायी है। लक्ष्मण रेखा है। बाहर निकलेगा तो मर जायेगा। इधर-इधर करेगा तो मरेगा। आहाहा!

और स्वयं ही अपना जाननेवाला होने से ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञाता है। इस प्रकार ज्ञानमात्र भाव ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता-इन तीनों भावों से युक्त, सहित। युक्त यानि सहित। सामान्यविशेषस्वरूप वस्तु है। सारी वस्तु, द्रव्य-पर्यायस्वरूप वस्तु है। द्रव्य-पर्यायस्वरूप वस्तु, ज्ञेय है, ध्यान का ध्येय नहीं। उपादेय तत्त्व नहीं है, ध्यान रखना। हाँ! पर्याय से सहित आया। हम तो पहले से ही कहते थे कि पर्याय से सहित ही आत्मा होता है। सोनगढ़वाले कहते हैं (कि) पर्याय से रहित, पर्याय से रहित। देखो! अमृतचंद्र आचार्य ने कहा कि पर्याय से सहित। अरे भैया! तू भूल में है। वह ज्ञेय की बात है, ध्येय की बात नहीं है।

'ऐसा ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ'-इस प्रकार अनुभव करनेवाला पुरुष अनुभव करता है। बोलो! इस प्रकार अनुभव करनेवाला आत्मा, इस प्रकार अनुभव कर लेता है।